किसका काम है औषधि मूल्य-नियंत्रण?

एस. श्रीनिवासन

यह विडम्बना ही है कि अपने बजटीय भाषण में वित्तमंत्री ने तो ड्रग प्राइस कण्ट्रोल ऑर्डर के अधीन आने वाली औषधियों की संख्या में कटौती की घोषणा की है लेकिन औषधियों के मूल्य निर्धारण के सिलसिले में सरकार द्वारा नियुक्त समिति की रपट में ऐसी किसी कटौती की सिफारिश नहीं की गई है।

सन् 2001-2002 के बजट को सकारात्मक रूप से प्रभावशाली कहा गया था और औद्योगिक जगत इसको लेकर काफी खुशियां मना चुका है। वित्तमंत्री ने अपने बजट-भाषण के दौरान औषधि उद्योग से वादा किया था कि ड्रग प्राइस कण्ट्रोल ऑर्डर (डी.पी.सी.ओ.) के अन्तर्गत आने वाली औषधियों की संख्या में कटौती की जाएगी। डी.पी.सी.ओ. के अन्तर्गत फिलहाल 74 औषधियां और इनके संयोजन आते हैं। बाज़ार में बेचे जाने वाले कुल औषधि उत्पादों का ये 35 प्रतिशत हिस्सा होती हैं। औषधीय उद्योग इसे कम से कम 20 प्रतिशत पर लाना चाहेगा। नेशनल फार्मास्युटिकल प्राइसिंग एथॉरिटी (एन.पी.पी.ए.) वह दूसरा क्षेत्र है जिसमें यह उद्योग कार्यवाही करना चाहता है। एन.पी.पी.ए. उन थोड़ी-सी सरकारी संस्थाओं में से एक है जो उद्योग जगत के उस्तादों से टकराने और कीमतें कम करने का साहस कर रही है। इस संदर्भ में हाल ही का एक उदाहरण है रेनिटिडीन और पेनिसिलिन की कीमतों में बहुप्रतीक्षित कमी।

हो सकता है हम आप कहें कि डी.पी.सी.ओ. के कामकाज पर निगाह रखना तो पेट्रोलियम पदार्थ और रसायन मंत्रालय के अधिकार क्षेत्र की चीज़ है। इस तरह से वित्त मंत्री द्वारा अपने बजट भाषण में डी.पी.सी.ओ. के अधीन आने वाली औषधियों में कटौती की घोषणा के औचित्य पर तो सवाल उठता ही है। इससे एक और भी बात ज़ाहिर होती है, कि सरकार का बायां हाथ उसके ही दाएं हाथ की गतिविधि से या तो बेखबर है या बेखबर बना रहना चाहता है। साल भर से कुछ ही पहले सरकार ने औषधि उद्योग से सम्बंधित दो समितियां नियुक्त की थीं; एक मूल्य नियंत्रण को लेकर और दूसरी शोध और विकास (R&D) को लेकर। दोनों ही समितियां अपनी रिपोर्ट पेश कर चुकी हैं। मूल्य-निर्धारण से सम्बंधित रिपोर्ट वर्ष 1999 के आखिरी दिनों में पेश की गई थी।

समिति के सदस्यों ने अमरीका, मैक्सिको, कनाडा, मिस्त्र आदि देशों की यात्राएं कीं। इटली, जर्मनी, जापान, इंग्लैण्ड, नीदरलैण्ड्स, स्विट्ज़रलैण्ड, इण्डोनेशिया और कोलम्बिया की मूल्य प्रक्रियाओं की समीक्षा भी की गई। इस अध्ययन से जो बात उन्हें समझ में आई वह आम धारणाओं के विपरीत थी। तथाकथित मुक्त बाज़ार अर्थव्यवस्था वाले देशों में भी औषधियों का मूल्य निर्धारण वहां के बाज़ार के हाथ में नहीं सौंपा गया है। समिति की रिपोर्ट में एक जगह कहा गया है कि ''प्रत्येक दवा के लिए, चाहे वह आयातित हो या देश के ही भीतर निर्मित, किसी उचित सरकारी प्राधिकरण से बिक्री की मंजूरी प्राप्त करना तथा उसका पंजीयन कराना बुनियादी तौर पर ज़रूरी है। अनेक देशों ने औषधीय उत्पादों की कीमतों में बढ़ोत्तरी को रोकने के लिए प्रतिपूर्ति मूल्य निर्धारण, रेफरेंस मूल्य निर्धारण, पेटेंटेड उत्पाद मूल्य निर्धारण जैसी पद्धतियां अपनाई हुई हैं। कुछ देशों में थोक विक्रेताओं और औषधि निर्माताओं के लिए मान्य लाभांश की सीमा निर्धारित कर दी गई है। कुछ दूसरे देशों में विपणन की मंजूरी प्राप्त करते वक्त ही कीमतों को पंजीकृत कराने पर ज़ोर दिया गया है। इसके अलावा समुचित स्वास्थ्य सुरक्षा सुनिश्चित करने वाली अनेक योजनाएं हैं जो या तो सरकारी निधि से संचालित हैं या स्वास्थ्य और बीमा के क्षेत्र में सक्रिय निजी कम्पनियों

द्वारा संचालित हैं।'' यहां समिति की संक्षिप्त सिफारिशों से एक उद्धरण देना उपयोगी होगा :

1. समिति ने देखा कि अधिकांश दूसरे देशों में, जहां सरकारें चिकित्सालयीन और बाह्यरोगी औषधियों की व्यवस्था करने वाली सामाजिक स्वास्थ्य और बीमा सम्बंधी योजनाओं के लिए निधि उपलब्ध कराती हैं, वहां सरकारी खर्च पर नियंत्रण की दृष्टि से औषधीय कीमतों का नियमन अनिवार्य माना गया है। उनके अपने स्वास्थ्य सम्बंधी बजट को एक उचित सीमा में रखने हेतु मूल्य नियमन का इस्तेमाल एक साधन के बतौर किया जाता है। इन देशों में जनसंख्या के एक बड़े हिस्से को स्वास्थ्य बीमा और लोक स्वास्थ्य योजनाओं के ज़रिए सुरक्षा प्रदान की गई है। नतीजतन उपभोक्ताओं को दवाओं की ऊंची कीमतों या महंगी स्वास्थ्य सेवाओं से प्रभावित नहीं होना पड़ता, इसकी बजाय वे इन बढ़ी हुई कीमतों की भरपाई बीमा प्रीमियम की ऊंची किश्तों के माध्यम से कर लेते हैं। इससे उलट भारत में आबादी का बड़ा हिस्सा बाज़ार पर निर्भर है और उसे तमाम खर्च अपनी जेब से ही उठाने होते हैं। परिणामतः बाज़ार में उपलब्ध औषधीय उत्पादों का मूल्य निर्धारण अपरिहार्य हो जाता है।

2. भारत में आबादी के एक बड़े हिस्से की गरीबी, अपर्याप्त स्वास्थ्य-संरक्षण, समुचित चिकित्सा-बीमा-सुरक्षा का न होना, मूल्य निरपेक्ष मांग, बाज़ार का अधकचरापन और उपभोक्ता की अपर्याप्त जागरूकता के मद्देनज़र समिति यह ज़रूरी समझती है कि औषधीय उत्पादों और दवाओं की कीमतों पर औपचारिक नियंत्रण को कुछ और समय तक जारी रखा जाए। ऐसा तब तक जारी रहे जब तक कि असमर्थ लोगों के लिए चिकित्सा-सुविधाओं पर किए जाने वाले सार्वजनिक खर्च में बढ़ोत्तरी नहीं हो जाती और अन्य लोगों के लिए कोई वैकल्पिक व्यवस्था नहीं हो जाती। हालांकि यहां यह उल्लेख प्रासंगिक होगा कि औषधीय उद्योग भारत का शायद अकेला ऐसा ज्ञान पर आधारित और अत्यन्त उच्च तकनीक-मूलक उत्पादक उद्योग है जो औपचारिक मूल्य-निर्धारण प्रणाली के अधीन है। इसकी वजह मुख्यतः यह है कि केन्द्र और राज्य सरकारों के बजट में किए जाने वाले वित्तीय प्रावधान बीमार लोगों की ज़रूरतों को पूरा करने की दृष्टि से बहुत ही अपर्याप्त हैं। समिति इस पहलू पर गहरी चिन्ता व्यक्त करती है और उसका यह मानना है कि बजटीय प्रावधानों में उत्तरोत्तर वृद्धि होनी चाहिए। इसके अलावा विकसित देशों की ही तरह, सरकार की ओर से भी और गैर सरकारी संगठनों की ओर से भी सार्वजनिक चिकित्सा सुविधा, अनिवार्य दवाओं की पूर्ति और स्वास्थ्य बीमा सुरक्षा के विस्तार की तत्काल आवश्यकता है। इस तरह की वैकल्पिक व्यवस्था आगामी पांच सालों में पूरी तरह क्रियान्वित हो जानी चाहिए।

3. इस देश में उत्पादन आधारित मूल्य-नियंत्रण की मौजूदा व्यवस्था काफी अर्से से कायम रही है। दवाओं की संख्या और कुल औषधीय बाज़ार में इनकी हिस्सेदारी के संदर्भ में देखें तो इस नियंत्रण में उत्तरोत्तर कमी हुई है। इन वजहों के कारण समिति की ऐसी राय है कि इस व्यवस्था को फिलहाल जारी तो रखा जाए लेकिन भारतीय अर्थव्यवस्था में किए गए उदारीकरण की बदली हुई परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इसके तरीकों और प्रक्रियाओं को सरल बनाया जाना चाहिए। नियंत्रण तथा औषधियों के मूल्य निर्धारण का क्षेत्र तय करने के उद्देश्य से समिति सिफारिश करती है : चयनात्मकता पर आधारित मूल्य निर्धारण की प्रक्रिया जारी रखी जाए और इनके चिकित्सकीय उपयोग से निरपेक्ष रहते हुए इसे देश में इस्तेमाल की जाने वाली तमाम औषधियों पर लागू किया जाए। विशिष्ट औषधियों की पहचान के मार्गदर्शक सिद्धान्त इस तरह हों (क) आम तौर पर औषधि के उपयोग के तरीके और (ख) इस तरह की औषधियों में समुचित प्रतियोगिता का अभाव। यह विधि इस बात को भी सुनिश्चित करेगी कि राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों के लिए ज़रूरी ऐसी औषधियां भी मूल्य निर्धारण के दायरे में आ जाएं जिन में प्रतिस्पर्धा नहीं है।

ज़ाहिर है, समिति की सिफारिशें मूल्य नियंत्रण को पूरी तरह हटाए जाने की बात नहीं करतीं। इसलिए यह भी ज़ाहिर है कि एन.पी.पी.ए. का विघटन नहीं किया जाना चाहिए। तब फिर वित्तमंत्री मूल्य निर्धारण के अधीन आने वाली औषधियों की संख्या को कम करने की बात क्यों करते हैं?

इस देश के लिए लगभग 250 आवश्यक औषधियों की ज़रूरत है। दुर्भाग्य की बात यह है कि ढेरों बेकार औषधियां अनाप शनाप कीमतों पर बेची जा रही हैं। भारत विवेकहीन औषधि निर्माताओं के लिए स्वर्ग बना हुआ है। और हाथी समिति (1975) के बाद से ऐसी कोई संस्था नहीं गठित की गई है जो भारत के औषधि निर्माण परिदृश्य के बारे में कोई समग्र दृष्टिकोण अपना सकी हो। संचार और उद्योग जगत में होने वाली चर्चाएं आजकल प्रायः भारतीय उद्योग को विश्वस्तरीय बनाने के विचार के बिना नहीं होतीं। उद्योग त्वरित छलांग लगाने को उत्सुक है, चाहे इसके लिए उसे बाज़ार अनावश्यक और अवैज्ञानिक औषधियों से भर देने का ही रास्ता क्यों न अपनाना पड़े। ड्रग टेक्निकल एडवाइज़री बोर्ड (डीटीएबी) और औषधि नियंत्रण के समक्ष उपभोक्ता समूहों द्वारा इस सम्बंध में पेश की गई शिकायतों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया।

इन्हीं वित्तमंत्री ने अपने पिछले बजट में मूल (जेनेरिक) औषधियों पर उत्पाद शुल्क लगाया था। इसने मूल औषधि के उद्योग को उस लाभ से वंचित कर दिया जिसका वह आर्थिक, स्वास्थ्यगत और वैज्ञानिक कारणों से हकदार था।

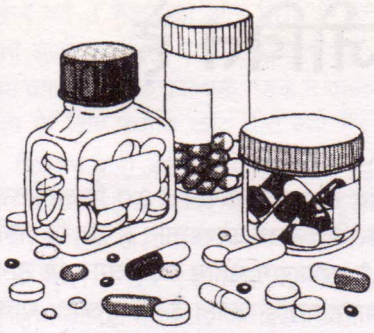

अब ये मूल औषधियां अपने ही व्यावसायिक नामों (ब्राण्ड नेम्स) वाली दवाओं के साथ प्रतिस्पर्धा में हैं। बड़े निर्माता इन मूल औषधियों को अब 500-1000 प्रतिशत तक के मुनाफे पर बेच रहे हैं - औषधि उद्योग के विभिन्न खिलाड़ियों को मिलने वाले कमीशन को यह उसी अनुपात में प्रभावित करते हैं। भारतीय उद्योग को विश्व स्तरीय बनाने की धुन में गुड मैन्युफैक्चरिंग प्रैक्टिसेज़ (जीएमपी) नियम रातों रात लागू कर दिए गए हैं; इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि हमारे पास विश्व स्तरीय लोक स्वास्थ्य सुरक्षा का इंतज़ाम है या नहीं। इन नए नियमों को अगर ईमानदारी से और बिना भ्रष्टाचार के बरता जाए तो वे इतने खर्च की मांग करते हैं कि नैतिक तथा गुणवत्ता के प्रति सजग रहने वाले छोटे और मध्यम निर्माताओं को उद्योग से बाहर हो जाना पड़ेगा।

यहां तक कि जब वित्तमंत्री अपने बहुप्रशंसित बजट भाषण के दौरान औषधि मूल्य नियंत्रण को कम करने का आश्वासन दे रहे थे, उसी वक्त दक्षिण अफ्रीका को एक उदाहरण की तरह प्रस्तुत करके औषधियों की ऊंची कीमतों को कम करने का एक अन्तर्राष्ट्रीय अभियान चल रहा था। यह तो उत्पादों के पेटेंट के कारण सम्भव हुआ है कि *सिपला* नामक एक भारतीय कम्पनी औषधि जगत के उन अंतर्राष्ट्रीय उस्तादों की जगह ले पाई है जो एड्स की औषधियां ऊंचे दामों पर बेचते हैं।

बजट और बजट भाषणों का जो भी महत्व हो, भारत के संदर्भ में यह ध्यान में रखा जाना ज़रूरी है कि सीमा तथा उत्पाद शुल्क व विक्रय कर के ज़रिए विभिन्न चीज़ों पर लगाए जाने वाले करों का प्रभाव न सिर्फ व्यावसायिक कम्पनियों पर बल्कि लोगों के स्वास्थ्य पर भी कितना पड़ता है। इस तरह की व्यवस्था में कर और शुल्क का भार विवेकहीन तरीके से और सभी पर समान रूप से नहीं डाला जा सकता। 'पान पराग' और बीड़ियों को सिगरेट के मुकाबले अधिक शुल्क संरक्षण नहीं दिया जाएगा क्योंकि वे सभी हानिकारक तम्बाकू के उत्पाद हैं जो साधारण लोगों को भारी नुकसान पहुंचाते हैं और फिर बीमार पड़ने पर वे दुर्लभ स्वास्थ्य संसाधनों का खर्च कर डालते हैं। ऐसी व्यवस्था में, अगर लोगों का स्वास्थ्य कोई मायने रखता है तो, तमाम ज़रूरी और यथोचित औषधियां और उनसे निर्मित दवाएं उत्पाद शुल्क और विक्रय कर से पूरी तरह मुक्त होंगी और निश्चय ही मूल्य नियंत्रण के अधीन होंगी। उत्पाद शुल्क प्रणाली फिर वैसी असंगतियों का शिकार नहीं होगी जहां रिफेम्पिसिन जैसी अत्यन्त उपयोगी और महंगी तपेदिक रोधी औषधि पर तो 16 प्रतिशत उत्पाद शुल्क है जबकि 21 दूसरी औषधियां, जिनमें से ज़्यादातर मलेरिया तथा तपेदिक रोधी हैं, उत्पाद शुल्क से मुक्त हैं। तपेदिक, कुष्ठ और मलेरिया को विशेष दर्जा क्यों? क्या एनीमिया (खून की कमी), फेफड़ों का संक्रमण और तमाम दूसरी बीमारियां गरीबों को दुर्बल नहीं बनातीं?

एनपीपीए के अध्यक्ष का यह अधिकृत बयान है (साधारण भुक्त भोगियों के लिए यह जितनी ज़ाहिर-सी बात है, उतनी अर्थशास्त्रियों और नीति विश्लेषकों के लिए शायद नहीं है) कि औषधि उद्योग के मामले में प्रतियोगिता से कीमतें कम नहीं होतीं। और न ही निजीकृत स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में ऐसा होता है। क्या वित्तमंत्री सुन रहे हैं? ***(स्रोत विशेष फीचर्स)***

वर्ष 1999 व 2000 के **स्रोत** *सजिल्द 150 रुपए में उपलब्ध हैं।*

डाक से मंगवाने पर 25 रुपए अतिरिक्त।

सम्पर्क: एकलव्य, ई-7/एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी, भोपाल – 462 016 (म. प्र.)